e-ISSN: 2319-8753 | p-ISSN: 2347-6710

IJIRSET

International Journal of Innovative Research in
SCIENCE | ENGINEERING | TECHNOLOGY

INTERNATIONAL JOURNAL OF INNOVATIVE RESEARCH

IN SCIENCE | ENGINEERING | TECHNOLOGY

Volume 13, Issue 10, October 2024

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

Impact Factor: 8.524

9940 572 462 | 6381 907 438 | ijirset@gmail.com | www.ijirset.com

International Journal of Innovative Research of Science, Engineering and Technology (IJIRSET)

Impact Factor 8.524

|www.ijirset.com |A Monthly, Peer Reviewed & Referred Journal| e-ISSN: 2319-8753| p-ISSN: 2347-6710|

Volume 13, Issue 10, October 2024

|DOI: 10.15680/IJIRSET.2024.1310043|

पर्यावरण के सतत विकास एवं संरक्षण में जनजातीय समाज का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

डॉ. योगिता निनामा

सह आचार्य, प्राणीशास्त्र श्री भोगीलाल पंड्या राजकीय महाविद्यालय, डूंगरपुर, राजस्थान

सार: आदिवासी संस्कृति प्रकृति सम्मत तो है ही, विज्ञान सम्मत भी है। प्रकृति के साथ आदिवासी संस्कृति के संस्कार जड़ जमाए हुए हैं। जिस वृक्ष संरक्षण की बात आज सारा विश्व कर रहा है, उसी वृक्ष को देवता मानकर आदिवासी संस्कृति ने पादप-जगत का जो सम्मान किया और संरक्षण दिया है वह अद्वितीय है। बड़-पीपल या नीम जैसे वृक्षों को धार्मिक महत्व से जोड़कर उनकी वंश-वृद्धि में आदिवासी जन-मानस ने जो सहभागिता निभाई है, वह अब जगत मान्य है। जलवायु और आपदा जोखिमों को अनुकूलित और कम करने के बारे में पीढ़ियों से उनके पास महत्त्वपूर्ण ज्ञान और विशेषज्ञता है। जल, जंगल तथा जमीन के संरक्षक आदिवासी अपने पूर्वजों से विरासत में प्राप्त परंपरागत ज्ञान को जैसे हलमा प्रथा (सामूहिक सहकार) से पर्यावरणीय चुनौतियों का समाधान करने के साथ प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन व पारंपरिक पद्धतियों के माध्यम से वे स्थानीय स्तर पर जल का संरक्षण और जल स्रोतों का पुनर्भरण करना सिखाते हैं। पहाड़ी पर पूरव दिशा में मिट्टी, गोबर, लकड़ी तथा अन्य सामग्रियों से बनाए गए हवा और रोशनी से भरपूर सुंदर घर व पालतु पशु बाड़े का निर्माण कर वे प्रकृति के प्रति लगाव व जिम्मेदारी की भावना के साथ पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं।

कीवर्ड : हलमा, वागड़, पॉलिथीन थैलियां, मेड़बंदी, बारे बीज।

I. परिचय

जनजातीय संस्कृति की अपनी एक विशेषता है। बारीकी से हम जनजातीय संस्कृति, परंपरा, लोक जीवन और पर्वों का अध्ययन करें, तो अनके विकासात्मक तत्व दृष्टिगोचर होते हैं। लोग सदियों से जनजातीय समाज को पिछड़ा मानते रहे हैं, पर वास्तव में ऐसा नहीं है। जनजातीय संस्कृति में जो परंपराएँ हैं, उन सबका वैज्ञानिक दृष्टिकोण और संवेदना से युक्त मानवीय आधार है। भारत के जनजातीय लोगों ने जैव विविधता के संरक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है और आदिवासियों के पवित्र उपवनों में वनस्पतियों और जीवों का संरक्षण किया है। संयुक्त राष्ट्र के आदिवासी मामलों के स्थाई फोरम की 2007 में जारी रिपोर्ट के अनुसार आदिवासी समुदाय विश्व के कुल 80 फ़ीसदी सांस्कृतिक और जैव विविधता के संरक्षण और संवर्धन के लिए सीधे तौर पर उत्तरदायी है। आदिवासी समुदाय अपने स्थानीय पर्यावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करके उसी के अनुकूलित जीवन यापन करते हैं, ये पर्यावरण जैसे घटकों व प्राकृतिक संसाधनों के साथ छेड़छाड़ नहीं करते हैं । इसके विस्थापन से पर्यावरण के हित में सोचना असंगत है।

राजस्थान का दक्षिणांचल (बांसवाड़ा, डूंगरपुर) वागड़ के नाम से जाना जाता है। राजस्थान के दक्षिणांचल में अरावली की सुरम्य उपत्यकाओं की प्राकृतिक गोद में बसे हुए आदिवासी बहुल क्षेत्र को "वागड़ प्रदेश" के नाम से जाना जाता है। यह क्षेत्र जिसे 'वागड़' के नाम से अभिहित किया जाता है, उदयपुर के खेरवाड़ा, धरियावाद और प्रतापगढ़ क्षेत्र तथा संपूर्ण बांसवाड़ा एवं डूंगरपुर जिलों में फैला है। वागड प्रदेश चारों ओर से अरावली पर्वत मालाओं से घिरा हुआ है इसलिए यहां का वातावरण बड़ा ही मनमोहक व रमणीय है। हरे-भरे पेड़-पौधों व नदियों से लदे वागड़-प्रदेश में

"माही बजाज सागर" बांध से इस अंचल का अधिकांश भाग हरियाली से लहलहाने लगा है। "माही बजाज सागर" बांध इस आदिवासी अंचल के लिए वरदान साबित हुआ है इस बांध की दो अलग-अलग इकाइयों से 140 मेगावाट विद्युत उत्पन्न कर वागड़ धरा को ज्योतिर्मय बनाने का प्रयास किया गया है। जिससे वागड़ का विकास तीव्र गति से हो रहा है। जाखम परियोजना व सोम-कमलाआंबा सिंचाई परियोजना की सिंचाई सुविधाओं के मिलने से यहां का आदिवासी समाज खाद्यान व हरियाली लाने में अग्रणी साबित हुआ है।

|www.ijirset.com |A Monthly, Peer Reviewed & Referred Journal| e-ISSN: 2319-8753| p-ISSN: 2347-6710|

Volume 13, Issue 10, October 2024

|DOI: 10.15680/IJIRSET.2024.1310043|

पर्यावरण
पर्यावरण का अर्थ है परि + आवरण। अर्थात अपने चारों ओर का वातावरण अथवा परिवेश कहलाता है। पर्यावरण में जल, थल, हवा, आकाश सब कुछ समाहित है। औद्योगिक विकास के चलते पर्यावरण प्रदूषित होता जा रहा है एवं पर्यावरण संतुलन बिगड़ता जा रहा है। पर्यावरण को निर्धारित करने वाले अलग-अलग तत्व है जैसे –

जल - औद्योगिक विकास एवं शहरीकरण के कारण इन औद्योगिक इकाइयों एवं शहरों का गंदा पानी चारों तरफ गंदगी एवं बदबू फैलाता हुआ साफ पानी में मिलकर उसे भी गंदा कर देता है। इस प्रकार गंदे पानी से जल प्रदूषण फैलता है। यह प्रदूषित जल जीव-जंतुओं एवं मनुष्य सभी को प्रभावित करता है। आदिवासी समाज में नदियों को पवित्र माना जाता हैं जिसका उदाहरण यहां साबला स्थित बेणेशवर धाम, जो सोम, माही व जाखम का संगम स्थल है जहां अस्थियां विसर्जित कर पूर्वजों के मोक्ष प्राप्ति का मार्ग माना जाता है।

थल - कालांतर में भूमि का पर्यावरण संतुलन भी बिगड़ा है जैसे पशु- पक्षियों का शिकार, वृक्षों की अंधा-धुंध कटाई, उत्खनन, बड़ें-बड़े बांधों का निर्माण, औद्योगीकरण आदि वे कारण हैं जिन्होंने इसे प्रभावित किया है। पशु-पक्षी तो गायब ही होने लगे हैं। शिकार पर प्रतिबंध होते हुए भी शिकारी लोगों द्वारा निरंतर शिकार से पशु-पक्षी नगण्य मात्रा में रह गए हैं जिससे पर्यावरण संतुलन बिगड़ रहा है। वृक्षों की अंधा-धुंध कटाई के पीछे औद्योगीकरण का मुख्य हाथ है बड़े-बड़े जंगल साफ हो गए जिससे इन वनों में रहने वाले पशु-पक्षी भी जंगलों से गांवों की तरफ गए जहां उनका शिकार हो गया। सर्वे के अनुसार बांसवाड़ा जिले के लोहारिया में तीस मिलियन टन, बारी लालपुरा में पंद्रह मिलियन टन, कमेरा उंडवाला में तीन सौ छियासी मिलियन टन, दांता और केला मेला में सौ मिलियन टन लाइमस्टोन दबा है। बांसवाड़ा से डूंगरपुर तक की जमीन की पट्टी के अंदर स्वर्ण भंडार होने के इस नवीनतम समाचार से कई लोग विकास और विनाश के कयासो में लगे हुए हैं। समाचार के अनुसार ‘‘डूंगरपुर जिले के पाल पादर व अमझेरा के वन क्षेत्र में बेस मेटल्स दबा है। इसमें कॉपर, जिंक, शीशा हैं। बांसवाड़ा जिले के जगपुरा-भूखिया में सैकड़ों मिलियन टन सोना दबा है, जिसके उत्खनन के लिए फिलहाल राज्य सरकार द्वारा टेंडर किए जा चुके है। खनन कार्य शुरू होते ही यहां के आदिवासियों को विस्थापन का शिकार होना पड़ेगा। स्वर्ण भंडारों के अलावा वागड़ क्षेत्र के बांसवाड़ा जिले में मैंगनीज नामक एक ऐसे खनिज पदार्थ का दोहन भारतीय इस्पात प्राधिकरण द्वारा किया जा रहा है जिसका उपयोग विशेष रूप से रक्षा उपकरणों, यानी टैंक, बंदूक, मिसाइल आदि के निर्माण में किया जाता है।

जंगलों पर ही वर्षा निर्भर होती है लेकिन वनों की कटाई से वर्षा की अनियमितता बढ़ गई है क्योंकि पर्यावरण संतुलन से ही सारी प्राकृतिक गतिविधियां जुड़ी हुई है। इकोसिस्टम में जंगलों के नष्ट होते चले जाने से असंतुलन बढ़ता जा रहा है। जंगल के विनाश के साथ जंगली जानवरों का जीवन भी खतरे में आ गया है। जानवरों की संख्या घट रही है और कहीं-कहीं इनकी नस्ल भी घटती जा रही है। इधर विकास कार्यक्रमों ने गांवों के शुद्ध वातावरण को मोटर, रेल और कई प्रकार के इंजनों के धुओं ने प्रदूषित कर दिया है। आदिवासियों के लिए जो वर्षों तक समाज की मुख्यधारा से प्रथक रहे हैं, यह पर्यावरण-प्रदूषण इस शताब्दी की बहुत बड़ी त्रासदी है। वायु प्रदूषण तो पर्यावरण संतुलन का सबसे बड़ा खतरा बना हुआ है। औद्योगिक विकास के कारण बड़े-बड़े कल कारखाने लगे। आज तो हालत यह है कि इन सबसे बेखबर आदिवासी अंचलों में भी बड़ी-बड़ी औद्योगिक इकाइयां लग गई हैं जो कई टन धुआं प्रतिदिन निकालती हैं। साथ ही दिन-ब-दिन बढ़ते वाहनों से भी वायु-प्रदूषण बहुत फैल रहा है।

वर्तमान में पॉलिथीन थैलियों का उपयोग असाध्य बीमारी की तरह फैल रहा है। पॉलिथीन स्वाभाविक रूप से नष्ट नहीं होती है। इसमें अनुपयोगी खाद्य सामग्री भरकर फेंकने पर पशु खाते हैं जिससे अपघटन व पाचन नहीं होने के कारण पशु मर जाते हैं। पालिथीन थैली को जलाने से निकलने वाले रासायनिक तत्वों के कारण वायु-प्रदूषण होता है। इसके द्वारा सूर्य का प्रकाश अवशोषित होने से मिट्टी का तापमान बढ़ जाता है। इसके नदी-नालों में इकट्ठी होने से पानी का पी.एच. प्रभावित होता है इस प्रकार यह पॉलिथीन थैलियां भी संपूर्ण पर्यावरण को प्रदूषित करती हैं परंतु गांवों में ढ़ाक के पत्तों से बने पत्तल-दोना प्लास्टिक अपशिष्ट को कम करने का उपयोगी तरीका है। अब इस पॉलिथीन थैलियों पर राज्य सरकार ने पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया है।

पर्यावरण संतुलन बनाए रखने के लिए चहुंओर विभिन्न सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा ‘‘पर्यावरण बचाओ’’ नामक अभियान चलाए गए हैं जिसमें सभी संगठन समाज में परिवेशीय स्वच्छता, वृक्षारोपण कार्यक्रम तथा जल ग्रहण पर जागरूकता पैदा करने में लगे हुए हैं जिससे समाज में इन सबके प्रति जागरूकता आई है।

परिवेशीय स्वच्छता हर मानव के स्वस्थ रहने के लिए अति आवश्यक है। स्वयं की सफाई के साथ घर तथा उसके आस-पास तथा गांव की सफाई भी वहां के बाशिंदों पर ही निर्भर है स्वच्छ, पहल तथा अन्य संस्थाओं ने स्वच्छता पर बहुत जानकारी अपने कार्यकर्ताओं के द्वारा जन-जन तक पहुंचाई है जिसका प्रभाव समाज में नजर आता है। अब इन प्रचार अभियानों से समाज में यह

International Journal of Innovative Research of Science, Engineering and Technology (IJIRSET)
Impact Factor 8.524
|www.ijirset.com |A Monthly, Peer Reviewed & Referred Journal| e-ISSN: 2319-8753| p-ISSN: 2347-6710|
Volume 13, Issue 10, October 2024
|DOI: 10.15680/IJIRSET.2024.1310043|

जागरूकता फैली है कि गंदगी से ही बीमारियां फैलती हैं। इन घातक बीमारियों से बचने के लिए सफाई आवश्यक है। जनजातीय समाज तक भी यह प्रचार-प्रसार अभियान पहुंचा। इसी का परिणाम यह है कि जनजातीय समाज के लोग साफ-सफाई पर ज्यादा ध्यान देने लगे हैं। परिवेशीय स्वच्छता ही स्वस्थ काया का राज है, इस बात को लोग समझने लगे हैं। नारों और लोकगीतों में यह चेतना कुछ इस रूप में अभिव्यक्त हुई है-
फेकवा नके देजु भाई, फेकवा नके देजु भाई
कसरो कूडो कोई रास्ता मैंय.......
साफ सफाई आपडे आए पाए राखजू-2
रोग नू घर आणी गंदगी मैय। फेकवा नके देजु भाई।"
भावार्थ: इस गीत में सफाई पर जोर दिया है। अपने आस-पास कूड़ा-करकट, गंदगी फेकने मत दो। इस गंदगी से ही रोग फैलता है। अपने घर के आस-पास सफाई रखनी चाहिए।

वृक्षारोपण कार्यक्रम भी वागड़ अंचल में जोर शोर से चल रहा है इस हेतु विभिन्न अभियानों के द्वारा चेतना विकसित की गई है। वृक्षारोपण से ही पर्यावरण संतुलन को बरकरार रखा जा सकता है। संपूर्ण अंचल में वृक्षारोपण कई वर्षों से चल रहा है जिसमें जनजाति समाज के लोग ज्यादा ही रुचि ले रहे हैं । 'सारे मेरे रोखड़ा' जैसे पाठ में पर्यावरण चेतना को आंचलिक शब्दावली में जनजीवन से जोड़कर जन जागृति की पृष्ठभूमि को तैयार कर प्रस्तुत किया गया है-
रोखड़ा ताप टारे।
रोखड़ा मेरे सोरा रमे।
रोखड़ा साटा पाड़े, सोपा पारे।
पेट पारे, पार पाड़े।
अर्थात वृक्ष गर्मी दूर करते हैं, उसकी शीतल छाया में बच्चे खेलते हैं, पेड़ों से ही बरसात होती है, वे पशुधन का पालन करते हैं, हमारा पेट भरते हैं तथा जीवन नौका पार लगाते हैं।

किसी भी आदिवासी के पास पेड़-पौधा नहीं हो ऐसा नहीं हो सकता। पेड़ तथा पशु आदिवासी परिवार की संपत्ति मानी जाती है। जिस आदिवासी परिवार के पास जितने अधिक पेड़ होते हैं वह अधिक प्रतिष्ठित व्यक्ति माना जाता है। वागड़ अंचल में प्रकृति की हरियाली, पलाश फूल की लालिमा, कोयल की कूक सहज ही सबको आकर्षित करती है। आदिवासी बहुल अंचल का पर्यावरण जगत सहजना, पलाश, शीशम, सेमल आदि के फूलों से सुशोभित रहता है। पलाश व अन्य वृक्षों के फूलों से प्राकृतिक होली के रंग बनाए जाते हैं। सेमल के पेड़ पर लगे लाल रंग के फूल दूर से ही अपनी खूबसूरती का अहसास करा जाते है, मानों पेड़ की शाखाओं पर कोई ताज सजा हो। ये पेड़ अपने खूबसूरत फूलों के अलावा गोंद, फल, जड़ों और कलियों में मौजूद कई तरह के चिकित्सकीय गुणों के लिए भी जाने जाते हैं। सेमल कई आदिवासी लोककथाओं से जुड़ा हुआ है। आदिवासी समाज में मुख्यतः आम, महुआ, जामुन, बेर, पीपल, वटवृक्ष तथा सागवान वृक्ष लगाए जाते हैं। शीशम, सागवान, महुआ, बांस आदि के वृक्ष गरीब आदिवासियों की जीविका के साधन बन सकते हैं। आम और महुआ तो आदिवासी समाज की मूल संपत्ति है इसे लगाने में यह लोग ज्यादा रुचि लेते हैं। इस अंचल में आम और महुए खूब देखने को मिलते हैं। कच्चे व पके हुए आम दोनों आय के अच्छे स्रोत है। महुवे का फूल ही नहीं इसके फल और बीज भी बेहद उपयोगी और औषधीय गुणों से भरपूर होते हैं। आदिवासी परिवार मार्च से अप्रैल तक महुये का फूल बीनते हैं और जून में इन्हीं गुच्छों में फल लटकने लगते हैं। महुआ के इन फलों से तेल निकाला जाता है। यहाँ पर महुआ नाम की शराब बनाई जाती है| जब महुआ के पेड़ पर फूल आते है, तो बड़े से लेकर छोटे बच्चों तक महुआ के फूलो को बिनते है और उसके बाद उसे सुखा कर बेचा जाता है। जोडों में दर्द ठीक करने के लिए ग्वार व सैजने के गोंद का उपयोग करते हैं। फोडे फुन्सियों एवं चर्म रोग को ठीक करने के लिए नीम के पत्तों को उबालकर पीते हैं। इसके अलावा तुलसी, लौंग, सोठ, पीपल, काली मिर्च का उपयोग बुखार एवं जुखाम ठीक करने के लिए किया जाता है। जनजाति समाज सभी तरह के वृक्ष लगाने में रुचि ले रहा है। क्योंकि ये वृक्ष ही आखिरकार उसका साथ देते हैं। आदिवासी जंगल से जीते हैं और जंगल आदिवासियों से जीता है। आदिवासी किसान के घर तथा खेत के चारों ओर वृक्ष देखने को मिलते हैं वह इसके वृक्ष प्रियता का ही नतीजा है।

गत कुछ वर्षों से हमारा देश ही नहीं अपितु संपूर्ण विश्व में स्पष्ट धारणा बनी है कि वनों एवं वृक्षारोपण क्षेत्रों की सुरक्षा एवं प्रबंध में स्थानीय जनता का सक्रिय सहयोग एवं जन-भागीदारी प्राप्त कर हम वन विकास के वृहद् लक्ष्य को अर्जित करने में स्थाई रूप से सफल हो सकते हैं।

भूमि कटाव व जल की बर्बादी को रोकने हेतु समस्त जानकारियां लोकगीतों के माध्यम से जन-जन तक बड़ी सहजता से पहुंच कर लोक-चेतना में घर करती जा रही है:-
जलग्रहण रो डंको भाया गॉवा गॉवा वाजे रे।

International Journal of Innovative Research of Science, Engineering and Technology (IJIRSET)

Impact Factor 8.524

|www.ijirset.com |A Monthly, Peer Reviewed & Referred Journal| e-ISSN: 2319-8753| p-ISSN: 2347-6710|

Volume 13, Issue 10, October 2024

|DOI: 10.15680/IJIRSET.2024.1310043|

भू संरक्षण रो नारो भाया, गॉवा गॉवा गाजे रे।।
रोको पाणी ने हां रे रोको माटी ने
भूमि व जल रोकवा रो काम, भाया गॉवा-गॉवा चाले रे।
कई दो भाई बेना ने, पाली बांधो रे।
रोको पाणी ने हां रे रोको माटी ने
जलग्रहण रो.....
खेता रो यो पाणी भाया, खेता माय रोको रे।
मोटी मोटी पाली बांध, माटी रोको रे।।
रोको पानी ने हारे रोको माटी ने... ऐ.....जलग्रहण रा काम भाया गांव-गांव में चाले,
चरनोटा में चारो ऊगावो, वृक्षारोपण करावो,
खुशहाली गांव में लाओ लाओ पाली बांधों के तारी
ऐ छोटे-छोटा नाला बांधो, बांधो एनीकट
पुरानी नाली ने पाछी बांधों, तालाबां री मरम्मत।
गांव रो पाणी गांव में रोको रे-2, पाली बांधों खेता री....!
भावार्थ: जल ग्रहण के द्वारा चलाए गए अभियान से भूमि व जल को रोककर संरक्षण करना चाहिए नदी नाले बांधकर निकट बनाकर मेड़बंदी कर खेत का पानी खेत में रोककर इनका संरक्षण करना चाहिए जिससे पर्यावरण संतुलित रहेगा पर्यावरण संरक्षण की दिशा में समन्वित जल ग्रहण विकास कार्यक्रम की भी अपनी एक महत्वपूर्ण भूमिका रही है विभिन्न अभियानों के द्वारा जन-जन तक पर्यावरण चेतना पिलाई गई है जिससे समाज का हर तबका पर्यावरण के प्रति अत्यधिक संवेदनशील बना हुआ है खासकर जनजाति समाज का सारा जीवन ही पर्यावरण संतुलन से ही संचालित होता है वह अति संवेदनशील बनकर वृक्षारोपण तथा अन्य पर्यावरण के अंगों में संतुलन बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

गांवों में बसने वाले आदिवासियों को कई जड़ी बूटियों की जानकारियां होती हैं। आधुनिक औषधियों के उपलब्ध होने से पहले, जड़ी-बूटियां ही बीमारियों के उपचार का एकमात्र साधन थीं। इनमें से कुछ पौधों में तो कुछ बीमारियों का चमत्कारिक उपचार करने के गुण विद्यमान है लेकिन परिरक्षण व उचित शिक्षा के अभाव या आधुनिक दवाइयों द्वारा इनका स्थान ले लिए जाने के कारण, पीढ़ी-दर-पीढ़ी इनका ज्ञान लुप्त होता गया। हाल ही में, कुछ लोगों ने परंपरागत या देशी परीक्षण के प्रति रुचि दिखाई है। यदि वे अपने कार्य को एक सूत्रबद्ध जारी रखें, तो यह भारतीय देशी औषधि भंडार को समृद्ध बनाने की दिशा में एक सफल कदम होगा। तेजी से हो रहे वनों के विनाश को देखते हुए, वन-संपदा की रक्षा के लिए कुछ न कुछ करना प्रत्येक विचारशील नागरिक की चिंता का विषय होना चाहिए। हमें इसका ज्ञान ही नहीं है कि दक्षिण राजस्थान के वनों में वनस्पति व जीव जंतुओं की अनेक दुर्लभ प्रजातियां तेजी से लुप्त होती जा रही हैं। उसी तरह बिना विवेक के प्रकृति के पारिस्थितिक तंत्र से छेड़छाड़ के कारण पौधों की बहुत सी दुर्लभ प्रजातियां वनों से लुप्त होती जा रही हैं। भारत में प्रकृति के प्रति लोगों का रुख भिन्न-भिन्न है। बहुत से जनजातीय-उत्सव व रीति-रिवाज प्रकृति से संबंधित है। प्रकृति के प्रति लोगों का रुख़ उनकी संस्कृति, धार्मिक एवं मिथकीय मान्यताओं के अनुकूल होता है। आमतौर पर वनों के निकट रहने वाले आदिवासियों में कई कहानियां तथा लोककथाएं प्रचलित होती हैं, जिनमें से कुछ उनकी आस्थाओं से जुड़ी होती हैं। लगभग हर वन भूमि एक प्रकार की रहस्यमयता के प्रभामंडल से घिरी होती है। इसलिए, पुराने समय में जंगल के निकट रहने वाले लोगों में वनों के प्रति एक आदरमिश्रित भय भी व्याप्त रहता था। अतः फिलहाल वन-संपदा को संरक्षित करने का सर्वोत्तम व सबसे असरदार तरीका लोगों को प्रकृति तथा मानव जाति के मध्य एक प्रतीकात्मक संबंध की जानकारी देना है। चाहे हम वन-सम्पदा को कुदरत द्वारा प्रदान की हुई दौलत समझें अथवा अपना प्रतीकात्मक मित्र, हमें प्रकृति के प्रति एक हितकर, मैत्री व प्रेम भावना रखनी चाहिए। शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति हो, जो हरे-भरे वन, रमणीक वादियां, प्रकृति की गोद में चरते-विचरते हिरण, भारी कदमों से इधर-उधर घूमते गेंडे, खुले मैदान में नृत्य करते मोर, चहचहाती हुई छोटी-छोटी चिड़ियां, तपती गर्मी में एक घने वृक्ष की सुखद छांव इत्यादि को पसंद न करें। मानव जाति की उत्तरजीविता के लिए वनों के महत्व के बारे में बच्चों को जानकारी देने के लिए, स्कूल पाठ्यक्रम में पर्यावरण जागरूकता से संबंधित विषयों को पढ़ाया जाना चाहिए। राष्ट्रीय पर्यावरण दिवस तथा वन्य पशु अधिकार-रक्षा अभियान जैसे कार्यक्रम ग्राम स्तर तक नहीं पहुंच पाए हैं। सरकार द्वारा इन कार्यक्रमों को आम जनता की संस्कृति का हिस्सा बनाकर देश के कोने-कोने में फैलाना चाहिए। वनवासी सदियों से वृक्ष को देवता मानते आये हैं। मेवाड़ का आदिवासी अंचल दुर्लभ जड़ी-बूटियों का खजाना भी है। मेवाड़ के उदयपुर, सिरोही, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ आदि जिलों के दुर्गम अंचलों में अनेक ऐसी दुर्लभ जड़ी-बूटियां पाई जाती हैं जिनकी अच्छी जानकारी कुछ आदिवासियों और कथूड़ी लोगों को है। ये औषधीय वनस्पतियाँ और पौधे रोजगार के अच्छे साधन हो सकते हैं। लेकिन न तो सरकार की इसके विकास में कोई रुचि है और न ही इन्हें प्रशिक्षण देने वाला कोई है। इसी प्रकार यहां के जंगलों में बीड़ी बनाने में उपयोगी टिमरू के पत्ते, खजूर, गोंद, शहद, आंवला,

International Journal of Innovative Research of Science, Engineering and Technology (IJIRSET)

Impact Factor 8.524

|www.ijirset.com |A Monthly, Peer Reviewed & Referred Journal| e-ISSN: 2319-8753| p-ISSN: 2347-6710|

Volume 13, Issue 10, October 2024

|DOI: 10.15680/IJIRSET.2024.1310043|

सफेद मूसली आदि वन उपज बड़ी मात्रा में पाई जाती हैं। ये वनस्पतियों के औषधीय महत्व से भी भलीभांति -भाँति परिचित रहते हैं। इनकी मान्यताओं का उपहास करने के बजाय इन पर शोध करने की आवश्यकता है।

वागड़ अंचल में विभिन्न योजनाओं एवं अवसरों पर पर्यावरण चेतना की जानकारी आम जनता के साथ आदिवासी समाज को दी जाती रही है। साक्षरता अभियान के दौरान पर्यावरण बचाओ का आंदोलन भी चलाया गया इसके लिए आदिवासी जनता को एक पेड़ काटो उसके बदले दस पेड़ लगाओ, पौध रोपण तथा नर्सरी योजना द्वारा जागरूकता लाई जाती रही है। स्वास्थ्य चेतना हो या ग्रामीण विकास पर्यावरण के प्रति हमारी लोक चेतना आरंभ से ही बहुत अधिक संवेदनशील रही है। सुंदरलाल बहुगुणा द्वारा चलाया गया "चिपको आंदोलन" पर्यावरण बचाओ का एक महत्वपूर्ण कदम रहा लेकिन इस आंदोलन से भी पूर्व जोधपुर के खेजड़ली ग्राम के विश्नोई समाज के लोगों ने शासन के वृक्ष काटने के आदेश के विरुद्ध खेजड़ी के वृक्षों से लिपट कर वृक्षों को बचाने के लिए बलिदान दिया जो पर्यावरण के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों से अंकित रहेगा। इस प्रकार के पर्यावरण बचाओ आंदोलन आदिकाल से चले आ रहे हैं। मोतीलाल तेजावत, गोविंद गुरु, काली बाई खांट, विजय सिंह पथिक आदि के नेतृत्व में इन आदिवासियों के पूर्वज अनेक वर्षों तक अंग्रेजों और राजा-महाराजाओं से लड़ते रहे। प्राचीन समय से लोग पीपली, बिल्व वृक्ष, वट वृक्ष, आम, तुलसी, कल्प वृक्ष आदि की पूजा करते आ रहे हैं। आदिवासियों के प्रत्येक गोत्र में 'टोटम' पाया जाता है 'टोटम' का अर्थ है कि किसी गोत्र का किसी विशेष पेड़ से वंशानुगत जुड़ाव। भीलों के निनामा गोत्र का जुड़ाव 'पीपल' नामक वृक्ष से, मईड़ा गोत्र करमड़ी नामक वृक्ष से, सारेल गोत्र बेहड़ा वृक्ष, बुज गोत्र बिल्व वृक्ष से आदि। इन पेड़ों की पूजा के संबंध में आदिवासियों का मानना है कि उनका विकास उस पेड़ से हुआ है तथा उस पेड़ को ये लोग परिवार के सदस्य के रूप में मानते तथा पूजते हैं। आदिवासी समुदाय के शादी, अंतिम संस्कार सहित अन्य संस्कार और त्योहार प्रकृति के अनुकूल होते है। आदिवासी इन वृक्षों को विभिन्न त्योहारों पर, विशेष कर शादी के अवसर पर गोत्र से 'टोटम' को पूजते हुए गीत गाते हैं जिसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

जागो जागो रे मारी करमड़ी माता-2
मानवी आया मानवी रे माता-2 हुतां हो के जागो रे, मारी करमड़ी माता-2
हुंवे पडियां कामे रे, आदि हुती- आदि जागूं-2
जीवा भाई नो कुंवर परणे, वेना पडियां कामे रे-2
मानवी आया हांना हानां भोगे लाया रे-2
लायां-लायां नारेलियां ना भोगे रे-2
नारेलियां लई पोगां लागों रे-2
थारे हानां-हानां बजे सड़े रे माता-2
सड़े सड़े रे मारे चोकीला रा भोगे रे-2
चोकिला लाई पोगा लागो रे-2

भावार्थ: मईड़ा गोत्र के भील आदिवासी जब शादी के अवसर पर दूल्हे को लेकर 'टोटम' वृक्ष 'करमड़ी' को पूजने जाते हैं उस समय महिलाएं गाती हुई कहती है कि हे करमड़ी माता सो रही हो या जाग रही हो? उठो! मनुष्य आए हैं। कुछ कुछ सो रही हूं तथा कुछ-कुछ जग रही हूं किसका क्या काम पड़ा है? जीवा भाई कुंवर शादी कर रहा है उसका काम पड़ा है क्या-क्या भोग लाए हो! भोग में नारियल तथा अन्य वस्तुओं का नाम लिया जाता है।

इस प्रकार उपरोक्त गीत के माध्यम से पता चलता है कि आदिवासी इन गीतों व 'टोटम' के माध्यम से इन वृक्षों के प्रति एक पारिवारिक सदस्य का भाव व्यक्त करते हैं। प्राचीन समय से आदिवासियों में पर्यावरण चेतना पर्याप्त रूप से पाई जाती है। क्योंकि आदिवासियों का सारा जीवन ही जंगल पर आधारित रहा हैं जो लगाव का अतिरिक्त कारण है यह वृक्ष सुरक्षा की चेतना धीरे-धीरे धार्मिकता से जुड़कर धार्मिक परंपराओं में आ गई जिससे कई वृक्षों की पूजा परंपरागत चली आ रही है इससे वृक्ष कटाई में कुछ हद तक कमी आई है। जिसका पर्यावरण संतुलन में बहुत बड़ा योगदान है।

वागड़ अंचल में आने वाले डूंगरपुर, बांसवाड़ा तथा प्रतापगढ़ जिलों में वन विकास एवं पर्यावरण बचाओ अभियान खूब चलाए हैं, इसके बावजूद अभी आदिवासी समाज में पर्याप्त जागरूकता नहीं आ पाई है। वागड़ अंचल प्रमुख रूप से आदिवासी बहुल क्षेत्र है जिनकी जीवन चर्या एवं संस्कृति वनों से घिरा से जुड़ी हुई है। वनों के विनाश एवं ग्रामीण क्षेत्रों में औद्योगीकरण से वागड़ अंचल का पारिस्थितिकी संतुलन बिगड़ रहा है। संपूर्ण राजस्थान से अधिक वर्षा का क्षेत्र घोषित किया जाने वाला यह अंचल आज सूखा व अकाल की गिरफ्त में आ गया है। इस अंचल का आदिवासी जो अपने ही क्षेत्र में छोटा मोटा धंधा करके उन्मुक्त वातावरण में खुश रहने वाला था, अब सूखे, गरीबी व अकाल की विभीषिका से ग्रस्त होकर रोजगार की तलाश में शहरों के प्रदूषण युक्त, घुटन भरे माहौल में जीवन बसर कर रहा है। वन ही आदिवासी समाज के जीवन की आधारशिला है। इनके नष्ट होने से आदिवासी जीवन ही

International Journal of Innovative Research of Science, Engineering and Technology (IJIRSET)

Impact Factor 8.524

|www.ijirset.com |A Monthly, Peer Reviewed & Referred Journal| e-ISSN: 2319-8753| p-ISSN: 2347-6710|

Volume 13, Issue 10, October 2024

|DOI: 10.15680/IJIRSET.2024.1310043|

खतरे में पड़ता जा रहा है। इससे पर्यावरण संतुलन बिगड़ रहा है। इस पर्यावरण के संतुलन को बनाए रखने के लिए केंद्र व राज्य सरकार भरसक प्रयत्न कर रही हैं।

जनजातीय समाज के लोक साहित्य में परंपरागत रूप से विद्यमान पर्यावरण चेतना जन मंगलकारी रूप से अभिव्यक्त होती दिखाई देती है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य है-

नांनं नांनं पौध रोपो, करो खूब हरियाली
हरियाली ग्राम में लावेगा, नवी नवी खुशहाली।
ऐ खेतर-खेतर हेण्डे रे, रोखडा उसारजु
ए प्राण वायु नो भरीलो भंडार, पाणी वेलु नुतरो।
रोकड़ं ने जे कापेगा इ आपडू गरु कापेगा
रोकड़ं खूब उगाड़ो तमें जीवन हदरी जाएगा
गामु ग्राम आ हिकमण आली दे रे बापुडा

एक अत्यंत प्रसिद्ध लोकगीत में वृक्ष के महत्व को दर्शाते हुए पर्यावरण के प्रति जन आस्था का सुंदर निरूपण हुआ है। गांव-गांव ढांणी ढाणी गूंजने वाले इस लोकगीत पर थिरकते आदिवासी बालक और युवतियों का उत्साह देखते ही बनता है। इस गीत में आधुनिक सरोकारों की स्थिति भी स्पष्ट है पूरा गीत इस प्रकार है-

वागड़ ना डूंगरा हूना है भाइयो,
वागड़ ना डूंगरा हूना हैरे लोल।
रुकड़ा लगाड़ो हरियाली लावो,
डूंगरा लीला करो रे लोल।
हुकू लाकड़ू कापो रे भाइयो,
लीलू कापे पाप लागेरे लोल।
बंजर धरती पूकार करे रे,
धरती नो श्रृंगार करो रे लोल।
रूकड़ा ना फायदा घणा रे भाइयों,
गरीबी दूर करे रुकडा रे लोल।
रूखड़ा लावे बरसात रे भाइयो,
बरसात थी फसल थाए रे लोल।
रुकड़ा थी जमीन पकड़ाय रे भाइयों
जमीन नो कटाव रोकाय रे लोल।
रूखड़ा आले पाना रे भाइयो,
पाना थी खातर बणे रे लोल।
रूखडा ने भाईड़ा हमजो रे भाईये,
कवियं नि वात हमजोरे लोल।
काल पड़े आडा आवे रे रुखडा,
पाना खाई ठोर जीवे रे लोल।
बारे बीज ना होगन है भाइयो,
रुखड़ा नके तमे कापोरे लोल।
रुखड़ा आपडा रक्षक है भाइयो,
भक्षक बणो नके इना रे लोल।

उक्त गीत का भावार्थ इस प्रकार है कि वागड़ की पहाड़ियां सूनी हो चली है अतः हे वागड़ वासियों पेड़ लगाओ, हरियाली लाओ और पहाड़ियों को हरा-भरा कर दो। सूखी लकड़ियों को काटो, परंतु हरे वृक्षों को काटना पाप है। बंजर धरती तुम्हारा आह्वान कर रही है। हरियाली से धरती का श्रृंगार करो। हे भाइयों! वृक्षों से अनेक फायदे हैं। वृक्ष गरीबी दूर करता है, बरसात लाता है और बरसात से फसलें लहलहाती है। वृक्षों की जड़े जमीन की मिट्टी को पकड़ कर रखती हैं इससे भूमि कटाव रुकता है। वृक्षों की पत्तियां खेतों में गिर कर खाद बनती हैं। हे भाइयों वृक्ष हमारे भाई हैं, कवियों द्वारा कही गई इन बातों को समझो। अकाल पड़ने पर वृक्ष ही काम आता है इसकी पत्तियां खाकर पशु जीवित रहते हैं। तुम्हें बारे बीज (कृषि देवता) की सौगंध है की वृक्ष को कभी कम काटो चूंकि यह हमारा रक्षक है अतः हम इसके जीवन भक्षक नहीं हो सकते। उक्त गीत में न केवल वृक्षों के प्रति आस्था व्यक्त हुई है बल्कि उनके महत्व की समझ तथा जन-जीवन का संवेदनात्मक जुड़ाव भी स्पष्ट दिखाई देता है।

|www.ijirset.com |A Monthly, Peer Reviewed & Referred Journal| e-ISSN: 2319-8753| p-ISSN: 2347-6710|

Volume 13, Issue 10, October 2024

|DOI: 10.15680/IJIRSET.2024.1310043|

जल ग्रहण के द्वारा चलाए गए अभियान से भूमि व जल को रोककर संरक्षण करना चाहिए। आदिवासी समुदाय नदी-नाले बांध कर, एनिकट बना कर, मेढबंदी कर खेत का पानी खेत में रोककर जल को संरक्षित करते हैं जिससे पर्यावरण संतुलित बना रहता है। पर्यावरण संरक्षण की दिशा में संबंधित जल ग्रहण विकास कार्यक्रम जैसे अभियानों के द्वारा जन-जन तक में पर्यावरण चेतना फैलाने से समाज का हर तबका पर्यावरण के प्रति अधिक संवेदनशील बनेगा। खासकर जनजाति समाज का सारा जीवन ही पर्यावरण संतुलन से ही संचालित होता है वे अति संवेदनशील बनाकर वृक्षारोपण तथा अन्य पर्यावरण के अंगों में संतुलन बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

II. परिणाम

आधुनिक समय में आर्गेनिक खाद्य पदार्थों की मांग बहुत है जिसकी आपूर्ति यह समुदाय बरसों से कर रहा है। आदिवासी समुदाय पीढ़ियों से जल, जंगल और जमीन को पूजता है, देवता मानता है। आदिवासी संस्कृति की शिक्षा प्रेरणादायक है, यह किताबी ज्ञान नहीं देती है वरन इससे आने वाली पीढ़ी को प्रकृति का ज्ञान, स्वास्थ्य का ज्ञान, कृषि का ज्ञान और आनंद से रहने का ज्ञान मिलता है। जनजातीय समुदाय के रग-रग में प्रकृति बसती है, उनकी परपंरा और संस्कार प्रकृति के अनुकूल है, जिनके पूर्वजो के संघर्ष ने बरसो से जंगलों को बचाकार रखा है। जो आज भी मानव सहित तमाम जीवो के अस्तित्व के आधार पर्यावरण को बचाने संघर्षरत है। ऐसे प्रकृति के अनुकूल सामाजिक समुदाय की जीवनशैली को अपनाना चाहिए ताकि पर्यावरण को बचाने के उद्देश्य में सभी की महत्त्वपूर्ण भूमिका बने।

III. निष्कर्ष

प्राकृतिक वातावरण में रहने के कारण जनजातीय समाज निरोगी व दीर्घायु रहता है जिसे कोरोना काल में सभी ने प्रत्यक्ष देखा। जड़ी-बूटियों व विभिन्न प्रजातियों के बीजों को संरक्षित कर आदिवासी समाज ने प्रकृति को सुरक्षित रखने की बुनियाद में अहम भूमिका निभाई है और यह अनवरत जारी है। आदिवासी समुदाय ने सदा से ही प्रकृति के साथ प्रकृति के लिए, प्रकृति को देते और सहेजते हुए जीवन जिया है। जल, जंगल, जमीन, पशु-पक्षियों व जैव विविधता को बचा कर रखा है तो इसका श्रेय आदिवासी जीवन शैली को ही जाता है।

सन्दर्भ

1. यूनओ की आदिवासी मामलों के स्थाई फोरम रिपोर्ट 2007
2. स्मारिका संपादक डॉ रमेश चंद्र मीणा, डा ओपी शर्मा का लेख- पर्यावरण को बचाने के लिए संघर्षरत आदिवासी 7-8 दिसंबर 2011 को राजकीय महाविद्यालय बूंदी में आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी, पृष्ठ संख्या-119
3. जनजाति पर वन विनाश का सामाजिक प्रभाव, शोधकर्ता शंकर लाल मेनारिया प्रायोजक- टी आर आई, उदयपुर
4. डॉ गणेश लाल निनामा, जनजातीय लोक सांस्कृतिक परंपराओं के बदलते आयाम

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

INNO SPACE
SJIF Scientific Journal Impact Factor

doi crossref

निस्केयर NISCAIR

INTERNATIONAL JOURNAL OF INNOVATIVE RESEARCH

IN SCIENCE | ENGINEERING | TECHNOLOGY

9940 572 462 6381 907 438 ijirset@gmail.com